मैं जितना प्रेमी उतना ही क्रूर पति था

- श्याम आचार्य

आत्मनिरीक्षण के लिए प्रायश्चित पहला चरण है। गांधी जी अपने जीवनकाल के प्रारंभ से ही आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया कभी नहीं छोड़ते थे। आत्मनिरीक्षण के बाद उन्हें लगता कि उन्होंने गलती की है तो वे प्रायश्चित करते, उपवास करते, मौन धारण करते और भविष्य में ऐसे गलती कभी न करने का संकल्प लेते। उनके जीवन में ऐसी अनेकों ऐसी घटनाएं घटी जब उन्होंने अपनी गलती पर प्रायश्चित किया। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है कि जब वे डरबन में वकालात करते थे उनके मुहर्रिर उनके साथ ही रहते थे। उनमें हिन्दू और ईसाई थे, प्रान्त की दृष्टि से कहूं तो गुजराती और मद्रासी थे।

मुझे स्मरण नहीं है कि उनके बारे में मेरे मन में कभी भेदभाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हें अपना कुटम्बी मानता था और यदि पत्नी की ओर से इसमें बाधा आती तो मैं उससे लड़ता था। एक मुहर्रिर ईसाई था। उसके माता-पिता पंचम् जाति के थे। हमारे घर की बनावट पश्चिमी ढ़ब की थी। उसमें कमरों के अन्दर मोरियां नहीं होतीं - मैं मानता हूं कि होनी भी नहीं चाहिए - इससे हर एक कमरे में मोरी की जगह पेशाब के लिए खास बर्तन रखा जाता है। उसे उठाने का काम नौकर का न था, बल्कि हम पति-पत्नी का था। जो मुहर्रिर अपने को घर का-सा मानने लगते, वे तो बर्तन खुद उठाते भी थे। यह पंचम् कुल में उत्पन्न मुहर्रिर नया था। उसका बर्तन हमें ही उठाना चाहिए था। कस्तूर बाई दूसरे बर्तन तो उठाती थी, पर इस बर्तन को उठाना उसे असह्य लगा। इससे हमारे बीच कलह हुआ। मेरा उठाना उससे सहा न जाता था और खुद उठाना उसे भारी हो गया था। आंखों से मोती की बूंदे टपकाती, हाथ में बर्तन उठाती और अपनी लाल आंखो से मुझे उलाहना देकर सीढ़ियां उतरती हुई कस्तूरबाई का चित्र आज भी खींच सकता हूं।''

आत्मकथा में इस घटना का ब्यौरा देते हुए गांधी यहीं तक नहीं रुके उन्होंने लिखा - 'पर मैं तो जितना प्रेमी उतना ही क्रूर पति था। मैं अपने को शिक्षक भी मानता था, इस प्रकार अपने अंधे प्रेम के वश होकर उसे खूब सताता था।'

गांधी जी लिखते हैं, 'यों उसके बर्तन उठाकर ले जाने से मुझे संतोष न हुआ। मुझे संतोष तभी होता जब वह उसे हंसते हुए ले जाती। इसलिए मैंने दो बातें ऊंची आवाज में कहीं। मैं बड़बड़ा उठा - 'यह कलहडा मेरे

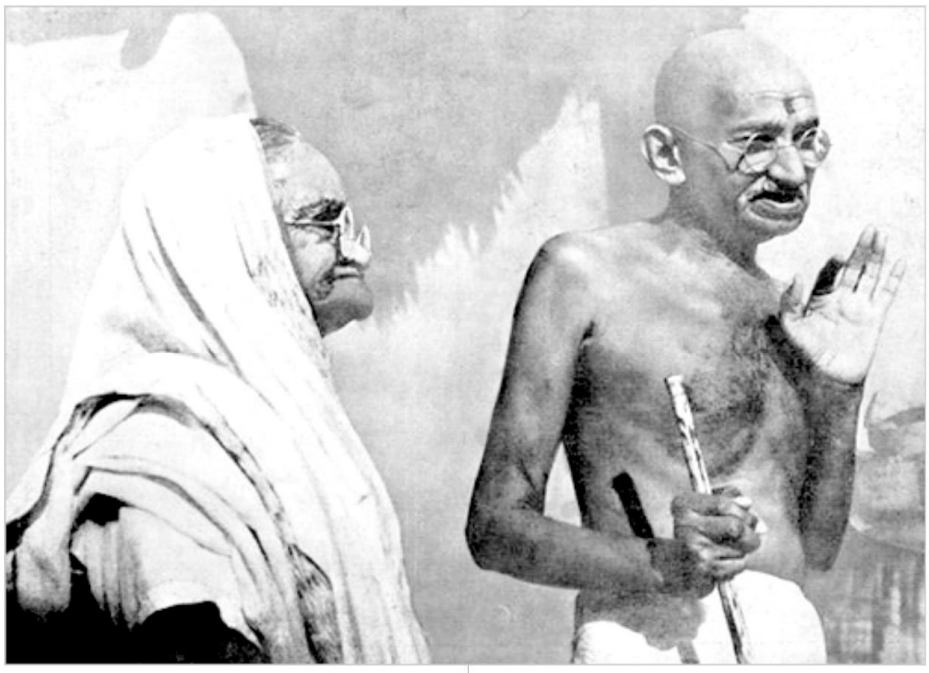

घर में नहीं चलेगा' यह वचन कस्तूरबाई को तीर की तरह चुभ गया। वह भड़क उठी अैर कहा, ''तो अपना घर अपने पास रखो। मैं यह चली।'

मैं उस समय भगवान को भूल बैठा था। मुझमें दया का लेश भी नहीं रह गया था। मैंने उसका हाथ पकड़ा। सीढ़ियों के सामने ही बाहर निकलने का दरवाजा था। मैं उस असहाय अबला को पकड़कर दरवाजे तक खींच ले गया। दरवाजा आधा खोला।

विह्वल होकर गांधी जी लिखते हैं - वह बोली 'तुम्हें तो शर्म नहीं है। लेकिन मुझे है। जरा तो शरमाओ। मैं बाहर निकलकर कहां जा सकती हूं? यहां मेरे मां-बाप नहीं है कि उनके घर चली जाऊं। मैं तुम्हारी पत्नी हूं इसलिए मुझे तुम्हारे डांट-फटकार सहनी ही होगी। अब शरमाओ - और दरवाजा बंद करो। कोई देखेगा तो दोनों से एक की भी शोभा नहीं रहेगी।'

गांधी जी ने इसके बाद बहुत शर्मिन्दगी महसूस की। उन्होंने लिखा है, 'मैंने मुंह तो लाल रखा पर शर्मिन्दा जरूर हुआ। दरवाजा बंद कर दिया। यदि पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी, तो मैं भी उसे छोड़ कहां जा सकता था। हमारे बीच झगड़े तो बहुत हुए है पर परिणाम सदा शुभ ही रहा है। पत्नी ने अपनी अद्भुत सहन शक्ति द्वारा विजय प्राप्त की है।'

गांधी जी आगे लिखते हैं, 'मैं यह वर्णन आज